सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

होके मायूस न यों शाम से ढलते रहिये,
ज़िन्दगी भोर है सूरज से निकलते रहिये।
एक ही पाँव पै ठहरोगे तो थक जाओगे,
धीरे-धीरे ही सही राह पै चलते रहिये।

—नलिनी शुक्ल

अंक-7 जुलाई-सितम्बर 1995

सम्पादक—डॉ० सुधेश

साहित्य कला परिषद, दिल्ली

(राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार का सांस्कृतिक विभाग)

4/6 बी, आसफअली रोड, नई दिल्ली-110002

साहित्य कला परिषद दिल्ली के नागरिकों को घर-घर पहुंच कर कला एवं संस्कृति प्रदान कर रही है।

साहित्य कला परिषद के अन्तर्गत विभिन्न योजनाएँ :—
संगीत, नृत्य, नाटक एवं ललित कलायें।

- युवा कलाकारों को आगे प्रशिक्षण हेतु संगीत, नृत्य, नाटक तथा ललित कलाओं के क्षेत्र में छात्रवृत्तियाँ/फैलोशिप प्रदान करना।
- युवा महोत्सव विभिन्न कलात्मक क्षेत्रों में कार्यरत युवा कलाकारों के लिए पूरी तरह समर्पित संगीत, नृत्य, नाटक और ललित कलाओं का एक उत्सव।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों की खोज करने के लिए वार्षिक संगीत, नृत्य तथा नाटक उत्सव।
- दिल्ली शहर तथा देहात के निवासियों के लाभार्थ कला एवं संस्कृति के कार्यक्रम।
- राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक जागरण के उद्देश्य से दिल्ली के कलाकार दूसरे प्रान्तों में भेजे जाते हैं तथा दूसरे प्रान्तों के कलाकार 'कला प्रदर्शन' के लिए दिल्ली बुलाए जाते हैं।
- प्रतिवर्ष साहित्य कला परिषद संगीत, नृत्य, नाटक तथा ललित कलाओं के क्षेत्र में शानदार योगदान के लिए दिल्ली के श्रेष्ठतम कलाकारों को सम्मानित करती है।
- रचनात्मक लेखन में लगे लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए परिषद नाट्य-लेखन-प्रतियोगिताओं का आयोजन करती है।
- पुरस्कृत नाटकों के मंचन हेतु साहित्य कला परिषद द्वारा नाट्य उत्सवों का आयोजन किया जाता है।
- परिषद कला-शिविरों का आयोजन करती है, जिनमें वरिष्ठ तथा उभरते हुए कलाकार, कला एवं शिल्प के क्षेत्र में खुले वातावरण में साथ-साथ काम करते हैं।
- ललित कला की प्रदर्शनियों के लिए निःशुल्क कलादीर्घा की सुविधा।

सचिव
साहित्य कला परिषद

सहज कविता

त्रैमासिक

वर्ष—2 जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1995 अंक—7

क्रम

विचार-विमर्श		
सहज कविता और ग़ज़ल		2-25
ग़ज़ल	—आनन्द बिल्थरे	3-9
	ऋषभदेव शर्मा	9
	वेदप्रकाश 'अमिताभ'	10
	राममूर्ति सिंह 'सौरभ'	10
	गणेशदत्त सारस्वत	11
	पूर्णिमा पूनम	11
	राजकुमार सैनी	12
गोपाल गर्ग की ग़ज़लें		12
ग़ज़ल	—राम सनेही शर्मा 'यायावर'	13-15
	सुधेश	16
हिन्दी ग़ज़ल का आग्रह	—चिरंजीत	16
हिन्दी ग़ज़ल का संकट	—ज्ञानप्रकाश 'विवेक'	17-18
मूल्यांकन	—डॉ० रमानाथ त्रिपाठी	19
	सुधेश	20
	अहमद महफूज़	21
सहज कविता पर एक दृष्टि	—डॉ० महेश 'दिवाकर'	21
		22-24

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित। तरुण प्रिंटर्स, 9267 पश्चिमी रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

अवैतनिक सम्पादक—डॉ० सुधेश

मूल्य छः रुपये, वार्षिक चौबीस रुपये। संस्थाओं के लिए तीस रुपये।

विचार-विमर्श

'सहज कविता' के तीसरे अंक के लिए धन्यवाद। यह प्रयास स्तुत्य है। हिन्दी में काव्य-ग्रन्थों की बिक्री कम होने का कारण उनकी दुर्बोधता भी है। सहज कविता-युग आरम्भ होने का समय आ गया है। ऐसा लगता है कि जनमानस की आवाज़ आज का कवि सुन रहा है।

—प्रो० माल तीटण्डन (मैसूर विश्वविद्यालय)

'सहज कविता' के अंक प्राप्त हुए। सम्पादकीय में कविता की सहजता के गुणों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है (अंक-2 के सम्पादकीय 'कविता में सहजता' में)। 'नई कविता,' 'अकविता' और 'विचार कविता' के बाद अब 'सहज कविता' भी निस्सन्देह साहित्य-आकाश पर अपनी चमक दिखाएगी।··· सितम्बर 94 के अंक में···रोचक कविताएं तथा विभिन्न विद्वानों···की 'सहज-कविता' के सम्बन्ध में टिप्पणियाँ निश्चय ही कविता के मार्ग में एक दिशासूचक का काम करती हैं।

—डॉ० परमानन्द पांचाल (दिल्ली)

'सहज कविता' के चौथे अंक में सहज कदिता के परिप्रेक्ष्य में लय और पाँचवें अंक में भाषा विषयक आपके सम्पादकीय लेख सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण हैं। आपका यह कथन सर्वथा उपयुक्त और न्यायसंगत है कि आज की हिन्दी कविता···को गद्यात्मकता से मुक्ति दिलाने के लिए उसमें लयात्मकता का समावेश करना जरूरी है।···इस शताब्दी के एक महान सिद्ध और दार्शनिक ओशो रजनीश ने जब मुझसे अपने 427 पृष्ठों के अद्भुत ग्रन्थ 'सहज समाधि भली' की भूमिका लिखने का अनुरोध कराया तो मैंने सहज कविता की अवधारणा को कवि के सर्जक मन की सहजावस्था (सहज समाधि) से जोड़ने का प्रयास किया। ओशो की यह विलक्षण कृति 1989 ई० में प्रकाशित हुई, जिसमें उक्त भूमिका समाविष्ट है।

साठोत्तरी हिन्दी कविता पर कतिपय आयातित आन्दोलनों के कारण जो संकट आया था, आज वह कुछ भिन्न रूप में अपनी जड़ें फैला रहा है। कृत्रिम वैचारिकता और सपाट बयानी के आलजाल में हमारी कविता गद्यात्मक अथवा गद्य होती जा रही है। ऐसे ऐतिहासिक क्षण में आपने···'सहज कविता' की माँग जिस रूप में नये सिरे से उठाई है, वह सर्वथा स्तुत्य है।···इससे समकालीन हिन्दी कविता को नयी दिशा और नयी गति मिलेगी।

—डॉ० रवीन्द्रभ्रमर (अलीगढ़ विश्वविद्यालय)

'सहज कविता' का अंक-3 मिला।···नवगीत, अकविता, नई कविता, गद्य-कविता आदि के उबाऊ अँधियारे के बीच···'सहज कविता' मोमबत्ती की ऊर्ध्व-गामी-लौ सी जगाने आई है, जो अभिनन्दनीय है।

—डॉ० डोमनसाहू 'समीर' (देवघर, बिहार)

(शेष पृष्ठ 25 पर)

सहज कविता और ग़ज़ल

सहज कविता अनेक रूपों में लिखी जा रही है। उनमें से एक रूप ग़ज़ल का है। 'सहज कविता और छन्द' शीर्षक लेख में (सहज कविता—अंक-3) मैंने संकेत किया था कि सहज कविता छन्दोबद्ध, मुक्त छन्द, छन्द मुक्त, तुकान्त तथा अतुकान्त आदि अनेक रूपों में लिखी जा रही है। गीत, ग़ज़लें, दोहे, मुक्तक छन्दोबद्ध कविता की श्रेणी में हैं। गीत की परम्परागत शैली को तोड़कर उसमें जो अनेक प्रयोग किये गये और उन्हें नवगीत कहा गया, उन्हें मुक्तछन्द की रचनाएँ कहा जा सकता है, क्योंकि उनमें छन्द का प्रयोग कुछ स्वतन्त्रताओं के साथ किया गया है। ग़ज़ल किसी छन्द का नाम नहीं है, पर उसमें जो छान्दसिक विधान कवि अपने लिए चुन लेता है, उसके निर्वाह के कारण ग़ज़ल को भी छन्दोबद्ध कविता की श्रेणी में रखा जा सकता है। ग़ज़ल सहज कविता का एक रूप है, इसलिए सहज कविता के परिप्रेक्ष्य में उस पर विचार करने की आवश्यकता है।

हिन्दी में ग़ज़लें पुराने ज़माने में भी लिखी गईं, पर पिछले कुछ दशकों से हिन्दी में ग़ज़ल का प्रचलन अधिक हुआ है। इसका एक कारण यह है कि हिन्दी कविता में गद्यात्मकता का ऐसा बोलबाला हुआ कि उसमें से कवित्व खो गया। पाठकों की रुचि आधुनिक हिन्दी कविता (विशेषत: समकालीन कविता) के प्रति कम होती गई। कविता के पतन अथवा कवित्व की व्यापक हानि के वातावरण में कुछ कवि ग़ज़ल की ओर मुड़ गये, क्योंकि वह उर्दू में खूब फल-फूल रही थी। हिन्दी में ग़ज़ल के अधिक प्रचलन का दूसरा कारण कुछ हिन्दी प्रकाशकों द्वारा उर्दू कवियों की रचनाओं का देवनागरी लिपि में व्यापक स्तर पर प्रकाशन है। अयोध्याप्रसाद गोयलीय के सम्पादन में 'शेर-ओ-सुखन', 'शेर-ओ-शायरी' के कई भाग हिन्दी में छपे। इस दिशा में बहुत पहले गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने उर्दू कविता का एक संकलन लम्बी-चौड़ी और विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ प्रकाशित कराया था। प्रकाश पण्डित के सम्पादन में उर्दू के पुराने और नये शायरों की प्रतिनिधि रचनाओं के अनेक संकलन दिल्ली के राजपाल एण्ड सन्स ने छापे। राजकमल प्रकाशन ने फ़ैज़ की रचनाएँ देवनागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों में एक

साथ छापीं। जो प्रकाशक कविता के नाम पर बिदकते थे वे उर्दू शायरी को देवनागरी लिपि में उत्साहपूर्वक छापने लगे, क्योंकि हिन्दी के पाठकों को उर्दू की ग़ज़लें और नज़्में रोचक लगीं। उर्दू कविता के इतिहास में ग़ज़ल सबसे अधिक लोकप्रिय विधा रही है और आधुनिक युग में भी नज़्म के प्रचलन के बावजूद शायर वही माना जाता है जो ग़ज़ल भी लिखता हो। इस प्रकार अनेक हिन्दी प्रकाशकों ने उर्दू कविता के नाम पर जो कुछ हिन्दी में छापा उसका अधिकांश ग़ज़ल के रूप में है। हिन्दी के प्रकाशक कविता प्रेमी नहीं हैं, पर पैसा कमाने के लिए उन्होंने हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों की उपेक्षा करके उर्दू के कवियों की ग़ज़लें छापने का सिलसिला शुरू कर डाला। इससे उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

उर्दू में ग़ज़ल की लोकप्रियता का दूसरा पहलू भी है। उर्दू में ग़ज़ल के इतिहास पर नज़र डाली जाए तो कहा जा सकता है कि उस पर शृंगारिकता हावी रही है और शृंगारिकता भी ऐसी बनावटी कि वह प्रदर्शन और फ़ैशन की चीज़ हो गई। उदाहरण के लिए उर्दू ग़ज़ल का माशूक़ (प्रेमपात्र) प्रायः पुरुष रहा है और आज भी वह पुरुष ही है। भारतीय परम्परा में प्रेमपात्र की कल्पना नारी के रूप में की जाती है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि नारी-सौन्दर्य पुरुष-सौन्दर्य की तुलना में अधिक आकर्षक है। अख्तर शीरानी ने अपने गीतों में खुलकर नारी को माशूक के आसन पर बिठाया, तो उर्दू कविता में इसे एक उल्लेखनीय प्रयोग माना गया, यद्यपि हिन्दी कविता की प्रकृति के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। मजाज़ लखनवी ने भी अपनी कई नज़्मों में नारी को ही माशूक के रूप में चित्रित किया, और इस प्रकार कई उर्दू शायरों ने उर्दू कविता को स्वाभाविकता की ओर मोड़ा। पर आज भी जो ग़ज़लें उर्दू में लिखी जा रही हैं, उन पर वह बनावटी शृंगारिकता हावी है, जो अपनी प्रदर्शन प्रियता के कारण पाठकों को आकर्षित करती हैं। तो उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण सस्ती भावुकता और बनावटी शृंगारिकता है। उर्दू ग़ज़ल की बात करते हुए इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज की उर्दू ग़ज़ल में सामाजिक यथार्थ का स्पष्ट स्वर भी मुखरित है, पर उसकी व्यंजना के लिए भी अनेक शृंगारिक प्रतीकों, जैसे शराब, साक़ी, प्याला, गुल, क़फ़स, सैयाद, मैखाना आदि का अथवा अरबी-फारसी शायरी से लिये गये मिथकों, आद्य बिम्बों, चरित्रों, काल्पनिक प्रसंगों का खुलकर प्रयोग किया जाता है, जिससे यथार्थ को भी रोमानी ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का पता चलता है। इससे वर्णन में रोचकता आती है।

देवनागरी लिपि में उर्दू ग़ज़लों के व्यापक प्रकाशन से हिन्दी पाठक तो आनन्दित हुए ही, पर प्रकाशक आनन्दित से अधिक लाभान्वित हुए, और हिन्दी कवि दोनों के आनन्द और अर्थलाभ से ईर्ष्या करता हुआ ग़ज़ल के मैदान में उतर

पड़ा। कुछ कवि कुशल पहलवान की तरह पूरी तैयारी के साथ मैदान में उतरे, पर आज ऐसे अनेक कवियों की भीड़ दिखाई देती है, जो चलना सीखने से पहले ही कविता के मैदान को सर करने के लिए दौड़ने लगे। पर यह कहना मुझे अनुचित नहीं मालूम होता कि अनेक हिन्दी कवि उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता से प्रभावित होकर हिन्दी में ग़ज़ल लिखने लगे और इस प्रकार विगत कुछ दशकों में हिन्दी में ग़ज़ल-लेखन का प्रचलन बढ़ा।

हिन्दी में ग़ज़लों के व्यापक प्रचार का एक और महत्त्वपूर्ण कारण आकाशवाणी और दूरदर्शन के क्रमिक विस्तार के साथ इन दोनों संचारमाध्यमों पर कुछ ग़ज़ल गायकों द्वारा ग़ज़लों का गायन भी है। पहले आकाशवाणी पर गायक गीत, भजन के साथ ग़ज़ल भी गाते थे अर्थात विभिन्न शैलियों की रचनाएँ गाते थे, पर देखते-देखते ऐसे गायकों की संख्या बढ़ने लगी, जो ग़ज़ल-गायक कहलाने लगे। भजन और गीत का गायन मानो घटिया काम हो गया और ग़ज़ल का गायन संगीत की उत्तम कला का उदाहरण माना जाने लगा। इसके लिए गायक इतने उत्तरदायी नहीं हैं, जितने आकाशवाणी के संगीत विभाग के अधिकारी। जो सिलसिला आकाशवाणी ने शुरू किया था, उसमें दूरदर्शन ने चार चाँद लगा दिये। दूरदर्शन पर अब हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी गायकों द्वारा गायी गयी ग़ज़लें सुनी जा सकती हैं, अथवा शास्त्रीय राग (जिन्हें कोई नहीं सुनता)। दूरदर्शन की ग़ज़ल गायकी के आगे अब आकाशवाणी राम-भजन गाने लगे तो आश्चर्य नहीं होगा।

हिन्दी में जो ग़ज़लें लिखी जा रही हैं, वे सब सहज कविता की उत्तम उदाहरण नहीं हैं। पहले उन्हें स्वयं को कविता सिद्ध करना है। गीत, ग़ज़ल अथवा अन्य कोई काव्यरूप अपने आप में श्रेष्ठ कविता होने की गारण्टी नहीं है। किसी भी काव्यरूप में लिखित रचना अच्छी या खराब हो सकती है। पर इस चर्चा को हिन्दी ग़ज़ल तक सीमित करते हुए आगे इस पर विचार किया जाए।

कुछ ग़जल-प्रेमी 'हिन्दी ग़ज़ल' शब्दावली से चिढ़ते हैं और कहते हैं कि ग़ज़ल तो ग़ज़ल होती है, और हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल के रूप में ग़ज़ल को बाँटना ग़लत दृष्टिकोण है। अगर यह कहा जाए कि हिन्दी में लिखित ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल होती है और उर्दू में लिखित ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल होती है, तो प्रश्न खड़ा होगा कि दोनों में क्या अन्तर है ? यह प्रश्न तब और गहरा बन जाता है जब यह मानकर चला जाता है कि हिन्दी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल से अलग दिखना चाहिए। विगत दशकों में हिन्दी में ग़ज़ल का अधिक प्रचलन उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता से प्रभावित है। एक भाषा का कवि दूसरी भाषा की कविता से प्रभावित हो तो इसमें क्या बुराई है और क्या अस्वाभाविकता है ? खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन में हिन्दी कवि पश्चिम से प्रभावित हो तो ठीक पर यदि वह हिन्दी

की सगी बहन उर्दू से प्रभावित हो तो क्यों ग़लत है? उर्दू कवियों ने गीत-लेखन की प्रणाली हिन्दी से ली तो उस से उर्दू कविता और समृद्ध हुई। अनेक हिन्दुस्तानी तथा पाकिस्तानी उर्दू कवियों ने हिन्दी के ढंग पर दोहे लिखे और अब भी लिख रहे हैं। पाकिस्तान के जमीलुद्दीन आली और भारत के निदा फ़ाज़ली दो कवियों का उल्लेख काफी है।

उर्दू में ग़ज़ल के विकास पर ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होगा कि ग़ज़ल उर्दू को अरबी तथा फारसी कविता की परम्परा से मिली। हिन्दी में ग़ज़ल का प्रवेश उर्दू के माध्यम से हुआ। तो हिन्दी के ग़ज़ल लेखक को ग़ज़ल की बुनियादी शर्तों का पालन तो करना ही होगा, यदि वह ग़ज़ल-लेखन में सफलता का आकांक्षी है। रदीफ़-क़ाफ़िये की बन्दिश ग़ज़ल की बुनियादी शर्तों में से एक है। ग़ज़ल के पहले शेर (मतला) का तुकान्त होना भी आवश्यक है। ग़ज़ल का विषय किसी ज़माने में महबूब से बातें करने तक सीमित रहा होगा, पर अब ग़ज़ल ज़माने से भी बातें करने लगी है। ग़ज़ल के कथ्य में यह गुंजाइश कवियों ने निकाल ली है कि वे दुनिया का कोई भी विषय ग़ज़ल में बांध सकें। ग़ज़ल की गेयता भी उसका अनिवार्य गुण है और वह उसके जादू का मूलाधार है। जब हिन्दी कवि ग़ज़ल लिखने का निश्चय करता है तो उसे उक्त बातों का ध्यान रखना होगा।

पर जब कोई कवि दूसरी भाषा के काव्यरूप को अपनाता है तो क्या उसे अपनी भाषा में शत-प्रतिशत उसी रूप में स्थापित कर सकता है जैसे वह दूसरी भाषा में है? शायद यह सम्भव नहीं है। प्रायः यह होता है कि दूसरी भाषा के काव्यरूप के बाहरी ढाँचे के अनुकरण के बावजूद किसी भाषा का कवि उसे अपनी भाषा की परम्परा के अनुसार ही अपनाता है। हिन्दी कवि जब ग़ज़ल लिखता है तो स्वाभाविक है कि ग़ज़ल के काव्य रूप को हिन्दी भाषा की प्रकृति और हिन्दी कविता की परम्परा के अनुसार अपनाता है और तब उसके भाषागत संस्कार उसमें परिलक्षित होंगे ही। पर कवि जब दूसरी भाषा के काव्यरूप के प्रति आकर्षित होकर उसे अपनी भाषा में प्रयुक्त करता है तब उसके बाहरी ढांचे के साथ उस से जुड़ी विशेषताएं कम या अधिक मात्रा में ग्राहक भाषा में आएंगी ही। इन समानताओं के कारण इसे दूसरी भाषा का अनुकरण नहीं कहा जा सकता। पर दूसरी भाषा के काव्यरूप से जुड़ी विशेषताएं शत-प्रतिशत स्थानान्तरित नहीं हो सकती। जो कुछ स्थानान्तरित हो सकता है वह काव्यरूप का ऊपरी ढाँचा ही है, उसका संगीत, उसका भाषागत चमत्कार, उसका सांस्कृतिक दाय दूसरी भाषा में स्थानान्तरित नहीं हो सकता। हिन्दी में अनेक कवि हाइकु नामक छन्द में कविताएं लिख रहे हैं, पर हिन्दी का हाइकु शत-प्रतिशत जापानी हाइकु नहीं हो सकता, क्योंकि जापानी हाइकु के पीछे हजारों सालों की जापानी संस्कृति है। इसी प्रकार हिन्दी कवि की ग़ज़ल शत-प्रतिशत उर्दू ग़ज़ल नहीं हो सकती। कुछ

समानताओं के बावजूद वह हिन्दी की ग़ज़ल ही रहेगी।

प्रायः हिन्दी कवियों की ग़ज़लों की आलोचना की जाती है और कहा जाता है कि उनमें उर्दू ग़ज़लों के गुण नहीं हैं। यदि हिन्दी कवि शत-प्रतिशत उर्दू ग़ज़ल लिखे अथवा उर्दू-फारसी शब्दों का खुलकर इस्तेमाल करे क्या तभी उसे सफल ग़ज़ल लेखक कहा जाएगा? दुष्यन्त ने प्रायः ऐसी ग़ज़लें लिखीं। पर मेरा विचार है कि दुष्यन्त की ग़ज़लों को सफलता उनके सामाजिक कथ्य और बेबाक व्यंजना-कौशल के कारण मिली। हिन्दी में आज ऐसे हिन्दी कवियों की भीड़ दिखाई देती है जो उर्दू-फारसी शब्दों के इस्तेमाल को ही ग़ज़ल की सफलता का आधार समझते हैं, हालांकि वे न रदीफ़-क़ाफ़िये की बन्दिश का पालन करते हैं और न गेयता का। बहुत से कवि दुष्यन्त का भद्दा अनुकरण कर रहे हैं। इसके विपरीत निदा फाज़ली और बशीर बद्र आदि उर्दू शायर ऐसी ग़ज़लें लिख रहे हैं, जिनमें फारसीपन नहीं है, बल्कि ठेठ हिन्दुस्तानीपन है। हिन्दी कवियों को अपना स्वतन्त्र मार्ग निकालना चाहिए। तब वे अनावश्यक फारसी शब्दों के मोह में न पड़कर ठेठ देसीपन की ज़मीन पर अपनी ग़ज़लों को स्थापित कर सकेंगे। अन्यथा उन पर यह आरोप लगता रहेगा कि वे हिन्दी में उर्दू ग़ज़ल लिख रहे हैं और वह उर्दू की कसौटी पर भी खरी नहीं उतरती।

हिन्दी में ऐसी असफल उर्दू ग़ज़लें देखकर कुछ कवि कहते हैं कि वे हिन्दी में विशुद्ध हिन्दी ग़ज़ल लिखेंगे और ग़ज़ल की विधागत शर्तों को समझे बिना वे हिन्दी ग़ज़ल का बीड़ा उठा लेते हैं और सारा ज़ोर यह दिखाने में लगा देते हैं कि उनकी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल से भिन्न है। फिर हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल की चख-चख शुरू हो जाती है। मेरा विचार है कि 'हिन्दी ग़ज़ल' नाम की कोई स्वतन्त्र विधा नहीं है। एक स्वतन्त्र काव्य विधा 'ग़ज़ल' है, जिसे हिन्दी में लिखित होने के कारण ही सुविधा के लिए हिन्दी ग़ज़ल कहा जा सकता है, अन्यथा इस नामकरण का कोई अतिरिक्त कारण नहीं है, और न इस नामकरण की आवश्यकता है।

इस तथाकथित हिन्दी ग़ज़ल के पक्ष में यह तर्क भी दिया जाता है कि इसका छन्दविधान उर्दू ग़ज़ल के छन्द विधान से अलग है। उर्दू ग़ज़ल में वार्णिक छन्द-विधान के अनुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर के रूप में बोलने की छूट है। इस प्रकार है', ये, वो, वे, का, की, के, आदि में प्रयुक्त दीर्घ स्वरों को ह्रस्व करके इन शब्दों को क्रमशः ह, य, वों, वे, क, कि, के के रूप में पढ़ा जा सकता है। कहा जाता है कि हिन्दी ग़ज़ल का छन्द विधान मात्रिक है या होना चाहिए, जिसमें शब्दों का यथावत् उच्चारण होता है। प्रश्न यह है कि हिन्दी कविता में जब वार्णिक छन्दों का विधान भी है (जैसे कवित्त, सवैया छन्दों के अनेक भेदों में) तो हिन्दी ग़ज़ल में मात्रिक छन्द के विधान का आग्रह क्यों किया जाय? क्या केवल हिन्दी ग़ज़ल के छन्द विधान को उर्दू ग़ज़ल के छन्द विधान से अलग सिद्ध करने के

लिए ऐसा आग्रह किया जाए ? उर्दू ग़ज़ल के छन्द-विधान को पूरी तरह वार्णिक नहीं कहा जा सकता। उसमें वार्णिक और मात्रिक छन्द दोनों के गुण पाये जाते हैं। कुछ शब्दों का उच्चारण वहाँ मात्रिक छन्द की तरह होता है और कुछ का वार्णिक छन्द की तरह। यह ठीक है कि ग़ज़ल का छन्द विधान कवित्त और सवैया जैसे वर्णिक छन्दों के समान नहीं है, क्योंकि कवित्त और सवैया छन्दों में गुरु और लघु वर्णों का क्रम निश्चित होता है, जबकि ग़ज़ल में वर्णों की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती। आशय यह है कि छन्द-विधान के आधार पर हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल में कोई निश्चित भेद नहीं किया जा सकता। दोनों में कृत्रिम भेद स्थापित करने से बेहतर यह है कि हिन्दी ग़ज़ल को ठेठ देसी ज़मीन पर स्थापित किया जाए और ग़ज़ल की अनिवार्य शर्तों का पालन किया जाए। उर्दू के अनेक समकालीन कवि अपनी ग़ज़लों में फारसीयत को छोड़ रहे हैं। तब हिन्दी ग़ज़ल-लेखक फारसी के तत्सम शब्दों और तरकीबों के चक्कर में क्यों पड़ें ? इसी प्रकार संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग से शुद्ध हिन्दी ग़ज़ल लिखने की कोशिश भी व्यर्थ का आग्रह है।

उर्दू ग़ज़ल में 'तग़ज़्ज़ुल' की बात भी की जाती है, जिसका हिन्दी ग़ज़ल में अभाव बताया जाता है। ग़ज़ल के गुणों का मिला-जुला नाम ही 'तग़ज़्ज़ुल' है। पर ग़ज़ल में अनेक गुण देखे जाते हैं, और अनेक आधुनिक शायरों ने ग़ज़ल में इतने प्रयोग किये हैं कि उनके आधार पर 'तग़ज़्ज़ुल' की कोई एक परिभाषा देना कठिन है। पर ग़ज़ल के प्रधान गुण रोमानियत का बोध भी इस शब्द से होता है, यद्यपि ग़ज़ल की रूपात्मक विशेषताओं को 'तग़ज़्ज़ुल' की सीमा से बाहर नहीं किया जा सकता। यदि रोमानियत को 'तग़ज़्ज़ुल का पर्याय माना जाए, और हिन्दी ग़ज़ल में उसके अभाव की शिकायत की जाए तो यह हिन्दी ग़ज़ल की विशेषता अर्थात् उसकी यथार्थवादी चेतना का सूचक होगा। आंख मूँदकर हिन्दी ग़ज़ल का अवमूल्यन करना और उसमें उर्दू ग़ज़ल की विशेषताएँ ढूंढना क्या आवश्यक है ? हिन्दी ग़ज़ल में हिन्दी कविता की विशेषताओं को क्यों न ढूँढा जाए ? त्रिलोचन ने अंग्रेजी के छन्द सानेट में अनेक कविताएं लिखी हैं। क्या उनमें अंग्रेजी सानेट की विशेषताएं ढूँढी जाएँ ? सानेट के चौदह पंक्तियों के विधान को और बीच-बीच में तुकान्त पंक्तियों की रूढि को त्रिलोचन ने अपनाया है पर अंग्रेजी छन्द की कई रूढियां छोड़ दी हैं। इसी प्रकार ग़ज़ल के बाह्य रूप को अपनाकर हिन्दी कवि कविता के क्षेत्र में जो अनेक प्रयोग कर चुके हैं और अब भी कर रहे हैं, उन पर ध्यान न देकर हिन्दी की सफल ग़ज़लों का अवमूल्यन उर्दू के नाम पर करना उचित नहीं है। यह सही है कि हिन्दी में ग़ज़ल के नाम पर बहुत-सी घटिया कविताएं भी लिखी गई हैं और खेद हैं कि उन्हें 'ग़ज़ल' का नाम भी नहीं दिया जा सकता, पर किसी भाषा के उच्छिष्ट के आधार पर

उसका मूल्यांकन नहीं किया जाता।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि ग़ज़ल की विधागत शर्तों का पालन करते हुए देसीपन की ज़मीन पर हिन्दी में ग़ज़लें लिखी जाएं तो बेहतर होगा। हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल में कृत्रिम भेद स्थापित करना भी उचित नहीं है क्योंकि वैसा आग्रह हिन्दी में लिखित ग़ज़ल को दूसरी अति की ओर ले जाएगा। हिन्दी और उर्दू में साहित्यिक स्तर पर भेदों को बढ़ाना उचित नहीं है, बल्कि उन्हें पाटने की आवश्यकता है। कोई ग़ज़ल हिन्दी की हो या उर्दू की, महत्वपूर्ण यह है कि वह सहज कविता या सच्ची कविता भी है या नहीं। हिन्दी में ग़ज़ल की विधा में बहुत सारी सहज कविताएं लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। उनके सम्यक् मूल्यांकन की आवश्यकता है।

—सुरेश

ग़ज़ल

सारा जीवन ताश-ताश सा,
पाया जीवन लाश-लाश सा।

चरते रहे कि चलते-चलते,
सारा जीवन घास-घास सा।

ज्योतिष-रेखाएँ सब झूठी,
अपना जीवन दास-दास सा।

भाग्य मिला तो नाबदान का,
सारा जीवन बास-बास सा।

मन में यों होता यों होता
सारा जीवन काश-काश सा।

—आनन्द बिल्थरे (बालाघाट, म.प्र.)

घर जले जिनके उन्हीं के हाथ घट देखा किये,
वे जलाशय पर खड़े उठती लपट देखा किये।

साधुवेशी तस्करों ने शहर सारा ठग लिया,
और वे रक्षक बने सारा कपट देखा किये।

साज़िशों की सनसनाहट छप गई अखबार में,
और वे ग़मगीन से खुफ़ियारपट देखा किये।

द्रौपदी दुश्शासनों को कोसती ही रह गई,
वे युधिष्ठिर बने बस छीना-झपट देखा किये।

लोग उनसे श्वेत पत्रों के लिए कहते रहे,
निश्चित संसद बीच वे रजतपट देखा किये।

—ऋषभदेव शर्मा (मद्रास)

हम बहुत प्यासे मरुस्थल हमें गंगा न मिल पायी,
उबलते आँसुओं से कब किसी की प्यास बुझ पायी ?

मथा जब सिन्धु तो अमरित मिला सब देवताओं को
मगर कुछ देवता खुद ही बने हैं कण्ठ विष पायी।

न जाने कौन-सा वैभव लिया था कर्ज़ आंखों ने
समूची उम्र रोकर भी हुई अब तक न भर पाई।

जिये नित सर्पवंशों में नहीं छोड़ी प्रकृति अपनी,
घिसा जिन क्रूर हाथों ने सुगन्धों की शरण पायी।

अगर रास्ता कभी भूले जले आकाशदीपों से
कभी दोहे कबीरा के कभी तुलसी की चौपाई।

—वेद प्रकाश 'अमिताभ' (अलीगढ़)

सबसे पहले प्यार बना होगा,
फिर सारा संसार बना होगा।

तन बिंधवाया होगा फूलों ने,
तब इक सुन्दर हार बना होगा।

तप-तप कर जुल्मों की भट्टी में,
आँसू भी अंगार बना होगा।

हम प्रकाश की क़ीमत आँक सकें,
इसीलिए अँधियार बना होगा।

जब-जब उलटी हवा चली होगी,
तिनका भी तलवार बना होगा।

—राजमूर्ति सिंह 'सौरभ' (फैजाबाद, उ. प्र.)

आज बोझिल-सा हुआ वातावरण है,
तम नहायी रोशनी की हर किरण है।

राम के पुरुषार्थ को ज़ाने हुआ क्या,
रोज होता अवध में सीताहरण है।

हाथ में माला बग़ल में है छुरी अब,
मात्र इतना ही हमारा आचरण है।

एक आशंका किसी भी हादसे की,
हो रहा ज्वालामुखी का अवतरण है।

दरबार में रावण गरजता दर्प से,
डगमगाता लग रहा अंगद-चरण है।

—गणेशदत्त सारस्वत (सीतापुर, उ. प्र.)

बिजली को साथ लेके घटा घूमती रही
वो मेरे आशियाँ का पता पूछती रही।

हर शख्स दे रहा था दिलासा मुझे मगर
रह-रह के लौ दिए की बहुत काँपती रही।

शोहरत के एतबार से क़द मुख्तसर ही था
थी आरजू ज़रा सी मगर क़ीमती रही।

अक्षर थे सिर्फ ढाई पर दीवान की तरह
जिनको तमाम उम्र ही मैं बाँचती रही।

हासिल तो हो गई मुझे दुनिया की हर खुशी
लेकिन तुम्हारे नाम की कितनी कमी रही।

—पूर्णिमा पूनम (जबलपुर)

दिन निकलने पै जगते हैं सोते नहीं
ज़ेवरों को पहनते हैं खोते नहीं।

क्या सही क्या ग़लत हम नहीं जानते
पर ज़हर के कभी बीज बोते नहीं।

जिनकी सूरत निगाहों में तस्वीर हो
वे निगाहों के नश्तर चुभोते नहीं।

हमने किसके लिए खुद को बेखुद किया
इतने पास आन कर दूर होते नहीं।

जितनी चाहो हमें उतनी दे दो सज़ा
हम मुहब्बत के मारे हैं रोते नहीं।

इन पै होठों का मरहम लगा चाहिए
ज़ख्मे दिल खारे पानी से धोते नहीं।

—राजकुमार सैनी (दिल्ली)

गोपाल गर्ग की ग़ज़लें

गोपाल गर्ग हिन्दी के सुपरिचित ग़ज़लकार हैं। उनकी ग़ज़लें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तथा 'सहज कविता' के पिछले अंकों में प्रकाशित हुई हैं। उनकी ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें रदीफ़-क़ाफ़िया तथा ग़ज़ल के अनेक नियमों का पालन हुआ है। ग़ज़ल मूलतः अरबी, फ़ारसी की काव्य-विधा है जो उर्दू में भी वहीं से आई। ग़ज़ल के अनुशासन को समझे बिना हिन्दी में सफल ग़ज़लें नहीं लिखी जा सकतीं। गोपाल गर्ग की ग़ज़लें इस तथ्य की गवाही देती हैं कि उनका ग़ज़ल के अनुशासन से गहरा परिचय है।

उनकी ग़ज़लों में सस्ती रोमानियत के स्थान पर समकालीन जीवन के यथार्थ का गहरा बोध भी मिलता है। रोमानियत उर्दू ग़ज़ल की एक बड़ी विशेषता है, पर गोपाल गर्ग की ग़ज़लें रोमानी कम यथार्थवादी अधिक हैं। उनमें किसान की वेदना, वक्त के 'ज़ुल्म की दास्तान' और फूल जैसे लोगों के बयान भी हैं—

खुद न मुजरिम दरख्त हो जायें,
फूल कैसे बयान छोड़ गया।

उनमें युगीन राजनीति पर करारा व्यंग्य है और भौतिक सम्पन्नता के पीछे छिपी सांस्कृतिक विपन्नता की झलक भी है—

सभ्य नहीं, सम्पन्न हुए हैं
हम सब भौतिक विज्ञापन से।

प्यार की मीठी चुभन और ज़िन्दगी जीने का उल्लास उनकी ग़जलों में बिखरा पड़ा है। आज का कवि प्रेम के नाम पर विधिवत संयोग-वियोग-वर्णन अथवा नख-शिख-वर्णन नहीं करता, बल्कि उसे चिट्ठी मिलने की आशा खोने के रूप में व्यक्त करता हैं। गोपाल गर्ग उस समकालीन यथार्थ को भी अपनी क़लम की नोंक से उधेड़ते हैं जिसमें 'हक़ भी मिले उधार सरीखे।'

उनकी भाषा में भी एक सहजता मिलती है, जो लोकजीवन, प्रकृति, सामाजिक वैविध्य, मानवीय विसंगतियों, शहरी चकाचौंध कहीं से भी शब्द उठा लेती है। उनकी भाषा का झुकाव बोलचाल की भाषा की ओर है, जो स्वागत योग्य है।

—सम्पादक

ग़ज़ल

कर्ज़ कुड़की लगान छोड़ गया।
यह वसीयत किसान छोड़ गया।

एक झरना जो सिर्फ़ पानी था,
पत्थरों पर निशान छोड़ गया।

खुद न मुजरिम दरख़्त हो जायें,
फूल कैसे बयान छोड़ गया।

दो क़दम फ़ासला न था फिर भी,
उम्र-भर की थकान छोड़ गया।

वक़्त, ग़ैरत की आंख में फिर से,
जुल्म की दास्तान छोड़ गया।

साथ क्या ले गया भला अपने,
क्या सिकन्दर महान छोड़ गया।

□

लगे सभी को भार सरीखे।
हक़ भी मिले उधार सरीखे।

बांट वही सकता है सुख जो
झेल चुका दुख प्यार सरीखे।

सूख गये आंखों की चौखट
सपने, बन्दनवार सरीखे।

पेड़ों ने अपनी शाखों को
फूल दिये उपहार सरीखे।

हम दोनों के बीच, हमारे
मौन खड़े दीवार सरीखे।

जब से आस मिटी चिट्ठी की
सब दिन हैं इतवार सरीखे।

कितने हैं इल्ज़ाम न पूछो ।
अब सूरज के नाम न पूछो ।

तुमसे अलग कहाँ बसते हैं
मेरे चारों धाम न पूछो ।

दुख सहने के पिछले अनुभव
आये कितने काम न पूछो ।

हर युग में संशय करता है
खुद पर ही क्यों, राम न पूछो।

निर्दल से 'दल' में आने के,
क्या मिलते हैं दाम न पूछो।

क्यों अभिशाप लगा करती है,
बिना नौकरी, शाम न पूछो।

कहां 'तीसरी क़सम' निभाकर,
चला गया 'गुलफ़ाम' न पूछो।

□

स्वप्न सँजोना बहुत जतन से ।
पूछ किसी पंछी के मन से।

सीमित मत कर सोच गगन का,
देख न उसको वातायन से ।

रह सकता सद्भाव सुरक्षित,
बस भीतर के अनुशासन से ।

शर-शैया पर भीष्म नहीं थे,
जाने कौन, अधिक अर्जुन से ।

फूलों से भी अधिक गंध क्यों,
आती यादों के चंदन से ।

सभ्य नहीं, सम्पन्न हुए हैं
हम सब भौतिक विज्ञापन से ।

सत्य नहीं मिलता जीवन का,
किसी देव के आराधन से ।

—गोपाल गर्ग (अजमेर)

दौर कुछ ऐसा भी चलना चाहिए,
मौन का पर्वत पिघलना चाहिए।

चाहते हो यदि उजालों की फसल,
आँधियों का घर भी जलना चाहिए।

चीर कर सीना शिलाओं का यहाँ
प्यार का अंकुर निकलना चाहिए।

तम तुला है सरकशी पर, सूर्य को—
वक्त से पहले निकलना चाहिए।

मौन के तट पर खड़े कब तक रहें
कभी लहरों पर फिसलना चाहिए।

—रामसनेही शर्मा 'यायावर' (फीरोजाबाद, उ० प्र०)

धीरे-धीरे बनते हैं किस्मत से बनते हैं,
रिश्ते मत तोड़ो कि बड़ी मुश्किल से बनते हैं।

रिश्ता कच्चा धागा है जो टूटा गाँठ पड़ी,
रूठे हुए हृदय भी तो मुश्किल से मनते हैं।

झीनी चादर के कच्चे धागों से झर जाते,
जीवन में यों सब ही सुन्दर सपने बुनते हैं।

यह घर फूँक तमाशा है बच्चों का खेल नहीं,
प्यार किया करते जो अक्सर सिर ही धुनते हैं।

अपना प्यार घृणा अपनी अब जो चाहे दे दो,
कहीं भिखारी भी अपनी भिक्षा को चुनते हैं?

—सुधेश

हिन्दी ग़ज़ल का आग्रह

वह (ग़ज़ल) गीत एवं नवगीत को हाशिये पर सरकाकर छन्दोबद्ध काव्य-साहित्य के केन्द्र में आ गई।···

हिन्दी के ग़ज़लकार मुख्यतया दो खेमों में बँटे हुए हैं। एक खेमा कबीर से लेकर जयशंकर प्रसाद और निराला तक चली आई मात्रिक छन्दों पर आधारित हिन्दी ग़ज़ल-परम्परा का अनुयायी है और मानता है कि उर्दू ग़ज़ल के मुक़ाबले में जैसे गुजराती, मराठी, तेलगु आदि भाषाओं की ग़ज़ल की अपनी अलग सत्ता और पहचान है, वैसे ही हिन्दी ग़ज़ल की भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता और निजी पहचान होनी चाहिए। दूसरा खेमा शमशेर बहादुर सिंह और दुष्यन्त कुमार की उर्दू-फारसी प्रधान ग़ज़ल शैली का समर्थक···है।···वह राष्ट्रीय एकता के नाम पर हिन्दी और उर्दू के बीच की दीवार गिराने का नारा लगाकर हिन्दी में ऐसी ग़ज़लों का सृजन कर रहा है, जिनमें 70 प्रतिशत ग़ज़लें देवनागरी लिपि में लिखी हुई शुद्ध उर्दू ग़ज़लें जान पड़ती हैं।···

इन दो खेमों के बीच अब एक ऐसा तीसरा खेमा भी उभरा है जो ग़ज़लकार है और दोहाकार भी। इस खेमे से जुड़े कवियों एवं समीक्षकों का मत है कि···दोहे की भाँति हिन्दी ग़ज़ल भी मात्रिक छन्दों पर आधारित होनी चाहिए। उर्दू-फारसी की जिन बहरों को हिन्दी ग़ज़ल के लिए अनिवार्य बताया जा रहा है, वे सब-की-सब मात्रिक छन्दों में ढाली जा सकती हैं। गुरु को लघु और लघु को गुरु बनाने की विधि उर्दू, अवधी और ब्रजभाषा में तो चल सकती है, परन्तु खड़ी बोली में नहीं। मात्रिक छन्द खड़ी बोली हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप है।···

तीसरे खेमे का मत दूसरों के मतों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक, युक्ति-संगत और इतिहास-सम्मत है। इसके साथ ही पहले खेमे का यह मत भी युक्ति-संगत है कि भाव, भाषा और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल की अपनी अलग पहचान होनी चाहिए।

मेरे इस मत में यह यथार्थ भी समाहित है कि फारसी व्याकरण सम्मत उर्दू ग़ज़ल देवनागरी में लिखे जाने पर हिन्दी ग़ज़ल नहीं हो जाती।···

उर्दू ग़ज़ल की हर बहर को हिन्दी के किसी-न-किसी मात्रिक छन्द में ढाला जा सकता है।···मेरी सभी ग़ज़लें उर्दू-फारसी की बहरों की बजाय हिन्दी के

मात्रिक छन्दों पर आधारित हैं। इनकी भाषा हिन्दी व्याकरण-सम्मत दिल्ली की वह खड़ी बोली है, जो आम बोलचाल में घुलमिल चुके अरबी-फारसी के शब्दों से परहेज़ नहीं करती। सभी ग़ज़लों का उपमा-उपमान-विधान और बिम्ब-प्रतीक-विधान हिन्दी काव्यशास्त्र-सम्मत है। इधर हिन्दी के कई एक ग़ज़लाचार्यों ने कुछ उर्दू वालों की देखा-देखी, यह फतवा ज़ारी किया हुआ है कि ग़ज़ल में शेरों की संख्या पाँच या सात से अधिक नहीं होनी चाहिए। मैंने यह फतवा नहीं माना। उर्दू ग़ज़ल के पुराने उस्तादों ने शेरों की संख्या पर ऐसा प्रतिबन्ध कभी नहीं लगाया था।...

मैंने उर्दू-फारसी की ग़ज़ल के केवल रूपाकार का ही प्रयोग किया है। सब में कथ्यगत भावों एवं विचारों की ऐसी अन्विति और एकसूत्रता है, जो हिन्दी गीत का अपना विशेष गुण है। कथ्यगत भावों एवं विचारों की अन्विति एवं एक-सूत्रता वाली गीतनुमा ग़ज़ल उर्दू में भी मिलती है। उसे ग़ज़ल मुसलसल कहा जाता है।

—चिरंजीत (दिल्ली)

श्रद्धांजलियाँ

हिन्दी के प्रसिद्ध हास्य-कवि प्रभुदयाल गर्ग 'काका हाथरसी' 89 वर्ष की आयु में 18 सितम्बर, 1995 को हाथरस में दिवंगत हो गये। काका ने लगभग 150 पुस्तकें लिखीं, जिनमें 40 काव्य-संग्रह हैं। उन्हें सन् 1985 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री उपाधि प्रदान की गई थी। सन् 1935 से वे 'संगीत' मासिक का सम्पादन और संगीत सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन करते रहे हैं। 'सहज कविता' परिवार की ओर से उन्हें श्रद्धांजलि।

हास्य-व्यंग्य के रचनाकार उमादत्त सारस्वत 91 वर्ष की आयु में 16 जुलाई, 1995 को अपने गाँव विसवाँ (सीतापुर) में दिवंगत हो गये। वे लगभग एक दर्जन स्तरीय ग्रन्थों के रचयिता थे। वे मुख्यत: हास्य-व्यंग्य लेखक थे, पर उन्होंने काव्य, नाटक, कहानी आदि विधाओं में भी लिखा। 'मन्दोदरी' उनका खण्डकाव्य है। उनके पुत्र डॉ० गणेशदत्त सारस्वत भी कवि हैं। दिवंगत आत्मा को हमारी श्रद्धांजलि।

—सम्पादक

हिन्दी ग़ज़ल का संकट

संकट ग़ज़ल विधा के हिन्दी में आने से हुआ। इसलिए हुआ कि वह ग़ज़ल न होकर 'हिन्दी ग़ज़ल' बन चुकी थी।···सब औज़ार उर्दू ज़बान के लेकिन ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल। यानी उर्दू का उरूज (छन्द शास्त्र), पैमाना, ज़बान, लहजा, मिज़ाज, क़ाफिया-रदीफ़ तक उर्दू के थे लेकिन नामकरण 'हिन्दी ग़ज़ल'।···

हिन्दी के शब्दों को मिसरों में ठूँसने के पराक्रम दिखाए गये। क्या सिर्फ़ शब्दावली किसी विधा को संस्कार प्रदान कर सकती है ? शायद नहीं।···उर्दू से ग़ज़ल को अलग करके जब उसे हिन्दी स्वरूप दिया गया तो ग़ज़ल की मूलभूत ज़रूरतें तक त्याग दी गईं। ग़ज़ल को हिन्दी और फिर शुद्ध हिन्दी ग़ज़ल बनाने का मोह···या संकीर्णता ग़ज़ल के मिज़ाज तक को अनदेखा करती रही। हर विधा का अपना मिज़ाज, लहजा, तेवर और शिल्प होता है।···हिन्दी ग़ज़ल को··· हिन्दी शब्दों का पिटारा-सा बनाया जा रहा है।···

हिन्दी ग़ज़ल की गिरावट का मुख्य कारण ग़ज़लकारों द्वारा इस विधा को मंच तक पहुंचने की सीढ़ी बनाना भी रहा है।···किसी काव्य-विधा का पाठकों के अतिरिक्त श्रोताओं तक पहुँचना उसके हित में होता है किन्तु अराजक स्थिति तब पैदा होती है जब विधा विशेष के साथ मंचीय लटके-झटके, रूमानियत और कोरी भावुकता का पुट भी मिला दिया जाए। हिन्दी ग़ज़ल के साथ यही हो रहा है।··· मंच अपनी शर्तें मनवाता है। जिन ग़ज़लों की तालियाँ तथा वाहवाह अर्जित करना मुख्य चिन्ता हो, वहाँ गम्भीरता और सामाजिक दायित्व बोध व्यर्थ की बात होती है।

—ज्ञानप्रकाश विवेक (नवभारत टाइम्स से साभार)

कवियों, आलोचकों से

यह अंक ग़ज़ल विधा पर केन्द्रित है। हिन्दी ग़ज़ल के स्वरूप, उसकी भाषा, उसके लेखन एवं मूल्यांकन की समस्याओं पर आप भी अपने विचार भेज सकते हैं। इस बहस को आगे बढ़ाने का विचार है। भविष्य का एक अंक हिन्दी दोहे पर केन्द्रित होगा। आपके दोहों तथा आलोचनात्मक टिप्पणी का स्वागत होगा।

'सहज कविता' के वार्षिक सदस्य बनकर इसे संबल प्रदान करें।

—सम्पादक

मूल्यांकन

डॉ० तारिणीचरण दास 'चिदानन्द' के खण्डकाव्य 'अशोक के तले'[1] के 15 सर्गों में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी सीता के चिन्तन के रूप में समस्त रामकथा की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है। कहीं चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग है, तो कहीं पूर्व दृश्य का।···इस खण्डकाव्य का स्रोत वाल्मीकि रामायण तथा रामचरित-मानस है।···कई स्थलों पर मानस की उक्तियों की छाप है।···सीता निर्वासन से सम्बन्धित प्रसंगों को सीता के भावी चिन्तन के रूप में···दिवास्वप्न जैसी स्थिति में प्रस्तुत करते हुए·· काव्य को कौशलपूर्वक सुखान्त बनाया गया है।

सीता नारी के स्वाभिमान की रक्षा के लिए धरती में समा जाना चाहती हैं। ···सीता के चिन्तन में आधुनिक भावबोध इस रूप में भी है कि वे अपने कारण होने वाले युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त हैं।

कैकेयी के कुप्रयास को किसी अलौकिक उक्ति का आधार न देकर बताया गया है कि प्रत्येक माँ ही अपने पुत्र का उत्कर्ष चाहती है। इसलिए कैकेयी ने ऐसा किया। बाद में वह 'मानस' की कैकेयी के समान ही पछतायी।···

आधुनिक काव्यों में राम को महामानव के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। ···इस काव्य में भी ऐसा ही है, किन्तु···उनके ब्रह्मत्व की उपेक्षा नहीं की गई। चिदानन्द जी ने उन्हें 'लीलाधर राम' कहा है···

आधुनिक बोध के काव्य में सीता द्वारा कृष्ण चरित का उल्लेख उचित नहीं जान पड़ता। एक उपमा भी काल दोष से युक्त है—'सर्च लाइट सी चमकती आँखें' (पृष्ठ 36)

भाषा तत्सम शब्द प्रधान है, किन्तु अरबी-फारसी के अति प्रचलित शब्दों से परहेज़ नहीं है।···इस लघुकाय खण्ड काव्य में कम-से-कम किन्तु कसे हुए सार्थक शब्दों का प्रयोग है।···मुक्त छन्द में प्रवाहमयता और लयात्मकता है।

मुझे आशा है कि एक अहिन्दी भाषी समर्थ लेखक की इस महत्वपूर्ण कृति का स्वागत हिन्दी जगत में अवश्य होगा। —**डॉ० रमानाथ त्रिपाठी (दिल्ली)**

डॉ० दिनेशचन्द्र द्विवेदी के खण्डकाव्य 'कालजयी'[2] में महाभारत के वीर-योद्धा कर्ण से सम्बन्धित कथा को आधार बनाकर कर्ण के शौर्य, त्याग, आत्म-

---

1. अशोक के तले, कवि चिदानन्द, प्रकाशिका श्रीमती हेमलतादास, 703 शहीद नगर, भुवनेश्वर (उड़ीसा), मूल्य 40 रु०, वितरक ग्रन्थायन, अलीगढ़।
2. कालजयी कवि दिनेशचन्द्र द्विवेदी, प्रकाशक साहित्य रत्नाकर 104 ए/118 रामबाग़, कानपुर, 1991 का संस्करण, पृष्ठ 112, मूल्य 50 रु०।

सम्मान आदि का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'सूर्य,' 'कुन्ती', 'इन्द्र', 'घटोत्कच', 'युद्ध' शीर्षक सर्गों में कवि ने जहाँ इन पात्रों के चरित्र, अन्तर्द्वन्द्व, और उनकी भूमिका को स्पष्ट किया है, वहाँ कथा को समेटने की कोशिश भी की है। 'कुन्ती' शीर्षक में कर्ण के ही उद्‌गारों का वर्णन है। कर्ण को कुन्ती से शिकायत है कि उसने क्यों नहीं छाती ठोंककर उसे अपना पुत्र घोषित किया। फिर भी वह घोषणा करता है :—

तूने न मातृ-व्रत पाला मैं पुत्र धर्म पालूँगा।

यह उसके उदात्त चरित्र का सूचक है। इसी प्रकार 'इन्द्र' शीर्षक में कर्ण की दानवीरता का वर्णन है। 'घटोत्कच' में भीम-पुत्र से हुए कर्ण के युद्ध का ओजस्वी वर्णन है। 'युद्ध' इस खण्ड काव्य का सबसे लम्बा सर्ग है, जो महाभारत संग्राम को और उसमें भाग लेने वाले योद्धाओं, विशेषत: कर्ण के शौर्य का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। इसके अनेक स्थलों पर वीर रस मूर्त्त हो जाता है।

'कालजयी' मुख्य रूप से एक ओजस्वी काव्य है। कवि ने वर्ण्य विषय के अनुकूल ओजमयी भाषा अपनाई है, जो दिनकर का स्मरण कराती है। छन्दो बद्ध शैली में लिखित यह काव्य पौराणिक वृत्त के बावजूद आधुनिक चेतना से सम्पन्न है। कवि के काव्य कौशल का प्रत्येक पृष्ठ पर प्रमाण मिलता है। —**सुधेश**

'चन्दन का पेड़'[1] डॉ० असलम परवेज़ की कविताओं का पहला संकलन है। यह शायरी का ऐसा दरिया है जिसका एक किनारा उर्दू है तो दूसरा हिन्दी। इसमें दोनों ज़बानों की लहरें एक साथ मिलकर उठती हैं जिन्हें हम अलग-अलग नहीं देख सकते।

डा० असलम परवेज़ मूलत: उर्दू के शायर हैं, पर ये हिन्दी के इतने करीब हैं कि उन्हें हिन्दी कवि भी कहा जा सकता है। यह संकलन देवनागरी लिपि में छपा है। यह एक अतिरिक्त कारण है इसे हिन्दी कविता कहने का। ये कविताएँ एक नयापन भी रखती हैं। यह नयापन महज़ फैशन के तौर पर नहीं है बल्कि इसमें शायर का वह अन्दाज़े फ़िक्र शामिल है जो नये ज़माने की देन है। नये ज़माने की धड़कनें इस किताब की नज़्मों और ग़ज़लों को सार्थकता प्रदान करती हैं। "चन्दन का पेड़" पढ़कर पाठक इसकी सुगन्ध से महरूम नहीं रह सकते।

—**अहमद महफूज़** (नई दिल्ली)

---

1. चन्दन का पेड़-कवि असलम परवेज़, प्रकाशक भारतीय भाषा केन्द्र, जे. एन-यू., दिल्ली 1994 पृष्ठ 111, मूल्य 75 रु०

सहज कविता पर एक दृष्टि

हिन्दी काव्य-जगत के मार्तण्ड, विश्वकवि, महाप्राण पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'छन्द के बन्ध' तोड़कर हिन्दी कविता की परवर्ती काव्य-धाराओं को जन्म दिया। फलतः हिन्दी कविता की शिल्प-संरचना में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। यही नहीं, हिन्दी कविता ने अपने आधुनिकतम स्वरूप को लेकर व्यापक सम्भावनाओं को जन्म दिया। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नयी कविता और स्वातन्त्र्योत्तर काव्य धाराओं के मूल उत्स और उनके वर्ण्य-विषय पर मतभेद हो सकते हैं, लेकिन इन काव्य-धाराओं की 'शिल्प-संरचना' को यदि ध्यान से देखें, और उनके उद्‌गम तलाश करें, तो उनका मूल छोर हमें 'निराला' के काव्य में मिलेगा।

कविता को निराला ने सहजता की ओर बढ़ाया। उन्होंने कविता को छायावादी, वायवीयता से मुक्त करके एक नया धरातल दिया।

ध्यातव्य है कि निराला ने 'छन्द के बन्द' ढीले कर कविता की शिल्प-संरचना को जिस सहजता की ओर उन्मुख किया, उसका कहीं-कहीं इतना दुरुपयोग भी हुआ है कि काव्य की जो प्रथम और अति महत्वपूर्ण शर्त है—'वाक्यं रसात्मकं काव्यं,' निराला के अनेक परवर्ती रचनाकारों में झुठलाती-सी दिखलाई पड़ती है। यथा 'मुक्ति बोध' की रचनाओं में दुरुहता, अति बौद्धिकता एवं रहस्यात्मकता सर्व विदित है।

यही कारण था कि कविता 'जन मानस' से दूर भागती चली गयी, जबकि निराला जी ने एक अच्छी शुरूआत की थी।

वस्तुतः कविता में 'काव्यत्व', 'सम्प्रेषणीयता' और 'दुरूहता' अलग-अलग शब्द हैं। 'दुरूहता' भाषागत और अर्थगत-दोनों ही प्रकार की होती है, जो 'काव्यत्व और 'कविता' की संप्रेषणीयता को क्षति पहुंचाती है। बहुत से रचनाकार अपने 'काव्य-कौशल' का प्रदर्शन करने के लिए अनावश्यक शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसे रचनाकारों का ध्यान शिल्प के प्रदर्शन पर अधिक, भाव के प्राकटन पर कम होता है। परिणति होती है कविता का बोझिल हो जाना। यथा-महाकवि केशव दास का ध्यान शिल्प-संरचना पर अधिक और वर्ण्य विषय पर कम रहा है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ पांडित्य के बोझ में दब गईं।

बात कविता में 'सहजता' को लेकर चल रही थी। कविता में 'सहजता' रहे, इसके लिए कविता छन्दमय रहे, यह आवश्यक नहीं है, ऐसा निरालाजी ने अवश्य अनुभव किया होगा ! हाँ, कविता में छंद भले ही न हो, किन्तु आन्तरिक लय का होना ज़रूरी है ! निराला की 'जुही की कली' और 'तोड़ती पत्थर' में यह स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है ! डॉ० सुधेश ने 'सहज कविता' के सन्दर्भ में स्पष्ट लिखा है—"....तो कविता को सहज होने के लिए उसका छंदमय होना आवश्यक नहीं है ! यदि वह छंदमय हो तो सहजता से वंचित भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि छंद कविता की प्रकृति के अनुकूल पड़ता है। पर कविता को सहज होने के लिए लय युक्त तो होना ही चाहिए।" **(सहज कविता—जनवरी 1994)**

निस्सन्देह, कविता को संप्रेषणीय होने के लिए उसका सहज होना जरूरी है, और 'सहजता' भाषा पर ही निर्भर नहीं होती, अपितु भावों के स्तर पर भी होती है। निराला के परवर्ती अनेक कवियों ने कविता में भाषागत प्रयोगों के चक्कर में पड़कर कविता को दुरूह तो बनाया ही, आम पाठक की 'समझ' से भी कविता को दूर कर दिया ! कविता में अनावश्यक बिम्बों, प्रतीकों, उपमानों और अलंकारों के प्रयोगों से कविता सहजता से क्लिष्टता की ओर अग्रसर होती चली गयी !

मेरी दृष्टि में सहज कविता वह है, जो पाठक के अन्तर्मन में बिना किसी बौद्धिक कसरत के उतर जाय, और उसे भरपूर काव्य का आनन्द प्रदान करे ! बाबा नागार्जुन की 'कालिदास' रचना की ये पंक्तियां देखिए—

"कालिदास, सच-सच बतलाना !
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे ?
कालिदास, सच-सच बतलाना !"

इसी प्रकार केदार नाथ अग्रवाल की रचना भी दृष्टव्य है—

"कँकरीला मैदान,
ज्ञान की तरह जठर-जड़ लम्बा-चौड़ा
गत वैभव की विकल याद में—
बड़ी दूर तक चला गया है गुमसुम खोया।"

उपर्युक्त रचनाकारों की रचनाओं को ध्यान से देखें तो भाषा एवं भावगत सहजता देखते ही बनती है !

डॉ० सुधेश ने 'सहज कविता' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—'सहज कविता' तुकान्त हो सकती है और अतुकान्त भी, पर उसे पहले कविता तो

होना होगा ! कविता की सहजता जहाँ उसके कथ्य पर निर्भर करती है, वहाँ उसके रूप पर भी ! कवि का अनुभूत सत्य उसकी कविता के कथ्य को सहज बनाता है, और उसके अनुकूल सहज सम्प्रेषणीय अभिव्यंजना कविता के रूप को सहज बनाती है।" ('सहज कविता' — जनवरी 1994)

डॉ० सुधेश के मत से स्पष्ट है कि कविता सहज, सम्प्रेषणीय होनी चाहिए, और उसमें गद्य से भिन्न काव्यत्व रहना चाहिए !

आज की कविता गद्यात्मकता की ओर अधिक उन्मुख हो रही है ! यह चिन्त्य है ! लेकिन दूसरी ओर ही अनेक ऐसे रचनाकार भी अपनी रचनाओं के साथ प्रकाश में आ रहे हैं, जिन्होंने काव्यगत-सहजता की ओर ध्यान दिया है, और वे सहज सम्प्रेषणीय कविताएं प्रस्तुत कर रहे हैं चाहे वे गीत हों या नवगीत, दोहा हों या मुक्तक, ग़ज़ल हों या रूबाइयाँ, हाईकु हों या नव छन्दात्मकता से परिपूर्ण नयी काव्य-रचनाएं, जिन्हें पढ़कर एवं सुनकर 'सहज-कविता' की विशिष्टता एवं उसकी प्रकृति का अनुमान लगाया जा सकता है ! इधर डॉ० सुधेश जी ने जनवरी फरवरी-1994 से 'सहज कविता' नाम से ही सहज कविता त्रैमासिकी का प्रकाशन करके समकालीन रचनाकारों, हिन्दी प्रेमियों एवं सहृदय-सुधी समीक्षकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है।

—डॉ० महेश दिवाकर (चाँदपुर, बिजनौर उ. प्र.)

गोष्ठी प्रसंग

'गीत चाँदनी' के तत्त्वावधान में दो दिनों का अखिल भारतीय गीतकार सम्मेलन हैदराबाद में मई 1995 में सम्पन्न हुआ।···गीत-विधा पर 4 सत्रों में डॉ० वसन्त चक्रवर्ती, निर्मला जोशी, डॉ० रजनी कुलश्रेष्ठ, डॉ० राजेन्द्र गौतम, डॉ० परमलाल गुप्त, श्रीराम अघोर ने आलेख प्रस्तुत किये। संगीत निशा और अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का भी आयोजन हुआ। सम्मेलन के आयोजकों में हैदराबाद के कवि पुरुषोत्तम प्रशान्त तथा नेपालसिंह वर्मा की मुख्य भूमिका रही। इस अवसर पर गीतकार-परिषद की तदर्थ समिति का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष डॉ० कुँवर बेचैन और कार्यदर्शी पुरुषोत्तम प्रशान्त चुने गये। (हिन्दी मिलाप, हैदराबाद से साभार)

(पृष्ठ 2 का शेष भाग)

'सहज कविता' का पाँचवाँ अंक मिला।...आपके सम्पादकीय (सहज कविता और भाषा) का वह अंश विशेष ध्यान खींचने वाला है कि सहज भाषा का अभिप्राय सरल भाषा नहीं होता। दुर्भाग्य देखिये कि विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक कविता की भाषिक विशेषताएं बताते समय इन दोनों को पर्याय के रूप में पढ़ाया जाता है।

—डॉ० देवराज (मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फाल)

'सहज कविता' का अंक-6 नसीब हुआ।...'कूज़े में समन्दर' छुपाने की कामयाब कोशिश के लिए साधुवाद।...आदर्श मदान, और सुरेन्द्र चतुर्वेदी की पूरी ग़ज़ल असरदार है।...एक पुरज़ोर शिकायत डॉ० गणेशदत्त सारस्वत की ग़ज़ल पर। सारस्वत जी की ग़ज़ल का पहला, तीसरा, पाँचवाँ, छठवाँ और सातवाँ शेर ग़ज़ल की व्याकरण के एतबार से ग़लत है।...ग़ज़ल अनुशासन में निबद्ध रहने के कारण ही आजतक ज़िन्दा है। इस क़िस्म की व्याकरण सम्बन्धी ख़ामियों से ग़ज़ल का हित सम्भव नहीं है। 'आज की कविता का सच' (सुरेश चन्द्र शर्मा) पूरा आलेख ही उद्धरणीय-संग्रहणीय है।

—डॉ० मधुर नज्मी (मऊ, उ० प्र०)

एक सुनियोजित षड्यन्त्र के तहत स्वतन्त्रता के पूर्वकाल से ही कविता से छन्द और लय को बहिष्कृत करने का प्रयास हुआ है। मंच पर आसन जमाये बैठे महन्तों के समानान्तर सृजनरत वीरेन्द्र मिश्र, रामावतार त्यागी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नीरज और नरेन्द्र शर्मा जैसे मूर्धन्य संवेदनशील रचनाकारों का उल्लेख उनकी आलोचना के लिए भी नहीं किया गया। केन्द्र में तथाकथित 'नई कविता' को स्थापित करने का प्रयास इसलिए होता रहा कि 'धर्म युग', 'कादम्बिनी'...तथा अन्य प्रचारमंच उनके हाथों में थे। यह प्रयास तब तक चला जब तक पाठक कविता के नाम से बिदकने नहीं लगा।...आज पुनः नवगीत, ग़ज़ल, दोहा और मुक्तक के रूप में कविता का छन्द और लय लौटे हैं। 'सहज कविता' बिना किसी तामझाम और बड़बोली घोषणाओं के इस दिशा का एक सार्थक क़दम है। मेरा विश्वास है कि यह कविता को उसके सही मुक़ाम तक पहुँचाने की...पहल है।...छन्द का अनुशासन कवि को उच्छृंखल होने से रोकता है। लय तो छन्द की अनुगामिनी है।

—डॉ० रामसनेही शर्मा यायावर (फीरोज़ाबाद)

हिन्दी अकादमी, दिल्ली

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार

समुदाय भवन, पद्म नगर, किशनगंज, दिल्ली-110007

दूरभाष-730274, 833488, 7521889

प्रान्तीय ईर्ष्या को दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी
प्रचार से मिलेगी उतनी और किसी चीज से नहीं मिल सकती।

सुभाष चन्द बोस

नेताजी के सपनों को साकार करने के उद्देश्य से हिन्दी अकादमी, दिल्ली निम्नलिखित हिन्दी प्रसार केन्द्रों का संचालन कर रही है। इनमें निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध हैं।—

क. पुस्तकालय एवं वाचनालय के साथ-साथ टंकण एवं आशुलिपि के प्रशिक्षण की व्यवस्था

ख. प्रवेश व प्रशिक्षण निःशुल्क

ग. टंकण केन्द्र प्रातः 10 से सायं 5.30 बजे तक
(द्वितीय शनिवार एवं प्रत्येक रविवार अवकाश)

केन्द्रों का स्थान

1. हिन्दी टंकण एवं आशुलिपि केन्द्र, समुदाय भवन, पद्मनगर, किशनगंज, दिल्ली-110007
2. हिन्दी प्रसार केन्द्र, गांधी भवन, दिल्ली विश्वविद्यालय, 32, छात्र मार्ग, दिल्ली-11007
3. हिन्दी प्रसार केन्द्र, ए-26/27ए सनलाइट इंश्योरेंस बिल्डिंग, आसफअली रोड, नई दिल्ली-2
4. हिन्दी प्रसार केन्द्र, नगर निगम प्राथमिक पाठशाला, महिपालपुर, दिल्ली,
5. हिन्दी प्रसार केन्द्र, सरस्वती विहार, दिल्ली-1100034
6. हिन्दी प्रसार केन्द्र, श्री सनातन धर्म सभा, स्वामी विवेकानन्द नगर (नीमड़ी कालोनी), दिल्ली-1100052
7. हिन्दी प्रसार केन्द्र, आर्य समाज मंदिर, नांगलोई, दिल्ली,
8. हिन्दी प्रसार केन्द्र, (त्रिलोकपुरी थाने के पास) पटपड़गंज, दिल्ली-92

इच्छुक व्यक्ति कृपया प्रभारी, हिन्दी प्रसार केन्द्र से सम्पर्क करें।

डॉ० रामशरण गौड़ (सचिव)

प्रकाशक श्रीमती सुशीला शर्मा 1335 पूर्वांचल, जे० एन० यू० नई दिल्ली,
तरुण प्रिंटर्स, 9267 पश्चिमी रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली से मुद्रित।
अवैतनिक सम्पादक—डॉ० सुधेश